International Journal of Sanskrit Research 2024; 10(5): 86-88

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2024; 10(5): 86-88
© 2024 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 17-07-2024
Accepted: 19-08-2024

नीतेश
शोधछात्रा, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
नीतेश
शोधछात्रा, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

बौद्ध धर्म में वर्ण–व्यवस्था

नीतेश

प्रस्तावना

बौद्ध ग्रंथों से समाज के प्राचीन चार वर्णों का बोध होता है। यद्यपि बौद्ध ग्रंथों में सदैव वर्ण–व्यवस्था की कटु–आलोचना की गई है। इनमें जन्माधारित व्यक्ति की श्रेष्ठता या निम्नता के निर्धारण का घोर विरोध किया गया है। महात्मा बुद्ध ने स्वयं कहा था कि जिस प्रकार आग जलाने के लिए लकड़ी का भेदभाव नहीं देखा जाता उसी प्रकार निर्वाण प्राप्ति के लिए मनुष्य में भेदभाव नहीं किया जा सकता। भगवान बुद्ध ने भिक्षु–संघ को संबोधित करते हुए कहा था– ''हे भिक्षुओ जिस प्रकार महा–नदियाँ समुद्र में मिलकर एकाकार हो जाती हैं उसी प्रकार चारों वर्णों के सदस्य तथागत द्वारा प्रतिपादित धर्म के अनुसार प्रव्रजित होकर यह भूल जाते हैं कि हमारा अमुक वर्ण था। अमुक वंश था। उनकी एकमात्र सञ्ज्ञा रह जाती है– श्रमण।''[1] बौद्ध संघ में ऊँच–नीच की भावना पनपने नहीं पाती थी। इसी कारण नापित पुत्र होने पर भी उपालि बुद्ध के प्रिय शिष्यों में थे और बुद्ध की निर्वाण प्राप्ति के बाद संघ के प्रधान होने का श्रेय भी उन्हें मिला।

जनसाधारण की दृष्टि में स्वयं स्रष्टा ने ही समाज का वर्गीकरण चार वर्णों में करके उनके कर्म निर्धारित किये। इस धारणा का उल्लेख कई जातक कथाओं में मिलता है। धर्मशास्त्र में सर्वोपरि स्थान ब्राह्मण का है परंतु बौद्ध वाङ्मय में क्षत्रिय का उच्च स्थान है। क्षत्रिय के बाद गहपति (वैश्य), सेट्ठि (श्रेष्ठि) तथा साधारण वैश्यों का जिनके अन्तर्गत उच्चवर्गीय शिल्पियों का भी बोध होता है। तत्कालीन समाज में साधारण वैश्य उस समादर के भागी न थे जो गहपतियों एवं सेट्ठियों को मिलता था। वैश्य वर्ग के पश्चात् नाम आता है भूमिहीन श्रमिकों का। अंत में उल्लेख मिलता है– चाण्डाल, निषाद, वेण, रथकार, पुक्कुस आदि हीन जातियों का, जो दरिद्रता तथा भोजन–वस्त्राभाव के शिकार थे।[2]

ब्राह्मण की स्थिति

बुद्धकालीन समाज का बहुसंख्यक जनसमुदाय वेदविहीन ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था जिसमें वैदिक यज्ञों की प्रधानता थी। फलस्वरूप तत्कालीन समाज में पुरोहित वर्ग अत्यन्त समादृत था। याजक के रूप में उन्हें गायें, वस्त्राभूषण, शयन सामग्री अनेक वस्तुएँ दानस्वरूप मिलती रहती थीं।[3] राजाओं द्वारा उन्हें भूमिदान मिला करता था। ऐसे ब्राह्मणों का राजा के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध होता था। उन्हें हर प्रकार से राजा का संरक्षण प्राप्त होता था। राजा के सखा के नाते वे क्रीडा में उनका साथ देते थे।[4] यह ब्राह्मणों का एक वर्ग था। दूसरा वर्ग उन ब्राह्मणों का था जो शास्त्रानुमोदित ब्राह्मणोचित कर्मों से विमुख हो गए थे और यह अस्वाभाविक भी नहीं था क्योंकि परिवर्तनशील परिस्थितियों तथा आर्थिक आवश्यकताओं ने अनेक ब्राह्मणों को बाध्य कर दिया कि ये अपनी पैतृक कर्मों–अध्यापन एवं पौरोहित्य का त्याग कर अन्य पेशे स्वीकार करें। समाज में जो नये परिवर्तन हो रहे थे और उनसे जो समस्याएँ उपस्थित हो रही थीं उन सभी से धर्मशास्त्रकार अवगत थे, अतएव उन्होंने ब्राह्मणों के लिए यह व्यवस्था की कि वे जीविकोपार्जन हेतु ब्राह्मणेतर वर्णों के कर्म करें। मनु का कहना है कि वे क्षत्रिय अथवा वैश्य का कर्म कर सकते हैं।[5] आपस्तम्ब के अनुसार उनको आपातकाल में वाणिज्य एवं कृषि कर्म करने की राय दी गई है।[6] सुत्तनिपात के विवरण से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में ब्राह्मण अनेक प्रकार के कर्म करने लगे थे। जैसे–कृषि, शिल्प, व्यापार, सैनिक–कर्म, प्रशासन इत्यादि।[7] जातकों के विभिन्न कथानकों में बहुकर्म ब्राह्मणों के अनेकानेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। सरभंग जातक के अनुसार पुरोहित पुत्र को धनुर्विद्या में पारंगत होने के कारण काशी नरेश ने अपना सेनापति नियुक्त किया। ब्राह्मण का गौरव त्याग, तपस्या और तितिच्छा पर ही आधारित था। इसलिए दोषयुक्त ब्राह्मण को जन्मना अब्राह्मण ही कहा गया है। उन्हें कुमार्गगामी और मूढ़ बताया गया है।[8] रौद्रचित्त, माँसभक्षण, अधैर्य, मद्यपान, गुरूदारभिर्दन, ब्रह्महनता पातक बताए गए हैं। सोने का अपहरण, सुरापान, गुरुदारभिगमन और ब्राह्मण हत्या चार ऐसे महान् पातक बताये गए हैं जिनमें से कोई एक भी दोष

ब्राह्मण में है तो वह ब्राह्मण समाज में भ्रष्ट माना जाता था और उसका स्वागत आसन, अर्घ्य तथा व्युत्थान द्वारा नहीं किया जाता था। पुनः बारह वर्ष वृत्तिचर्या करता हुआ ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर सकता था। विनयपिटक में एक अभिमानी ब्राह्मण के द्वारा भगवान बुद्ध से यह पूछने पर कि ब्राह्मण कैसा होता है भगवान बुद्ध उसे ब्राह्मण की परिभाषा देते हुए कहते हैं– ब्राह्मण वह है जो अभिमान, पाप, मल से रहित एवं संयम रखने वाला, ब्रह्मचारी, वेद का ज्ञाता हो एवं ब्रह्म को जानने वाला हो।[9] बौद्ध लेखकों के अनुसार सच्चे ब्राह्मण तीनों वेदों में पारंगत, इतिहास, व्याकरण, लोकायत आदि अनेक विद्याओं के मर्मज्ञ होते थे।[10]

क्षत्रिय की स्थिति

बौद्ध साहित्य में वर्ण की गणना ब्राह्मण वर्ण से न होकर क्षत्रिय वर्ण से आरंभ हुई।[11] क्षत्रिय बलवान, युद्ध में पारंगत, विजिता, राजा, प्रभूति, कोषाधिपति आदि सम्बोधनों से सम्बोधित किये गए हैं। राज्य के प्रति अपने पुनीत कर्त्तव्यों का निर्वहन करना ही क्षत्रिय राजा का धर्म था। बौद्ध और जैन आगमों में कहा गया है कि धर्म प्रवर्तक महापुरूषों को उत्पन्न करने का श्रेय क्षत्रिय वर्ग को ही है। प्रशासन और रक्षात्मक कार्यों से सम्बद्ध होने के कारण क्षत्रिय सर्वप्रमुख था। क्षत्रिय तीनों वेदों की शिक्षा प्राप्त करते थे किंतु इनका प्रमुख कार्य शत्रुओं को पराजित करना तथा प्रजा की रक्षा करना था।[12]

ऋग्वेद में क्षत्रियों को 'क्षय' से संबोधित किया गया है जिसका अर्थ है शौर्य एवं पराक्रम।[13] मनु ने क्षत्रिय को सामाजिक व्यवस्था में समाज की रक्षा का भार सौंपा है। मनु के अनुसार प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना और विषयों में आसक्ति न होना क्षत्रिय का धर्म है।[14] विनयपिटक के वर्णों की सूची में क्षत्रियों को सबसे ऊपर दिखाया गया है।[15] मज्झिमनिकाय एवं अंगुत्तरनिकाय आदि से भी इसी वार्ता की पुष्टि होती है कि क्षत्रिय वर्ण का स्थान सर्वोपरि था। इस प्रकार स्पष्ट है कि उत्तरवैदिककाल में ब्राह्मण एवं क्षत्रियों में परस्पर श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धा थी। बहुत से ऐसे क्षत्रिय शासक हुए हैं जिन्होंने अपनी विद्वत्ता, दार्शनिकता और ज्ञान से अनेक ब्राह्मणों को अपना शिष्य बना लिया। जनक, अश्वपति, कैकेय, काशीराज, अजातशत्रु और प्रवहणजैबलि आदि अनेक क्षत्रिय राजाओं ने अपनी विद्वता से ज्ञानी ब्राह्मणों को परास्त किया। क्षत्रियों का जातीय गुण शासन एवं सैन्य संचालन था। प्रशासनिक कार्यों एवं सामरिक कार्यों के कारण अन्य लोगों से भिन्न थे। पालिपिटकों से ज्ञात होता है कि राज्य मंत्री, सेनानायक, प्रशासनिक उच्च अधिकारी तथा सामन्त प्रायः क्षत्रिय ही हुआ करते थे।[16] विनयपिटक में क्षत्रिय राजाओं का दण्ड ग्रहण करने वाले एवं शस्त्र ग्रहण करने वाले वर्णों के रूप में उल्लेख मिलता है।[17] इस प्रकार कहा जा सकता है कि क्षत्रियों का मुख्य कार्य शासन संचालन एवं युद्ध कार्य था। किंतु जातक में क्षत्रियों द्वारा वणिक, हस्त–शिल्पी, कुम्भकार, गायक, वादक, पाचक आदि के कर्म करने का भी उल्लेख मिलता है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि क्षत्रिय आर्थिक परिस्थितियों से बाध्य होकर इस तरह का कार्य करने लगे थे, जबकि विनयपिटक में ब्राह्मणों द्वारा ऐसे कार्य करने का कारण आर्थिक परिस्थितियाँ ही थीं। क्षत्रियों ने शीलरहित ब्राह्मणों पर आघात किया, जबकि वेदज्ञ ब्राह्मणों का सम्मान किया। अपने इन्हीं गुणों के कारण शीघ्र ही क्षत्रिय समाज का सर्व सम्मानित वर्ग बन गया।

वैश्यों की स्थिति –

पालि पिटक में वैश्य वर्ग के लिए गहपति, सेट्ठि, कुटुम्बिक इत्यादि सञ्ज्ञायें प्रयुक्त की गई हैं। गहपति से सामान्य तथा किसी भी वर्ण के सदस्य का बोध होता है। परंतु बौद्ध लेखकों ने जिस संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग किया है उससे वैश्य जाति का ही बोध होता है। पालि साहित्य में जहाँ भी गहपति शब्द का प्रयोग ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय गृहस्वामी के लिये हुआ वहाँ राष्ट्र रूप में ब्राह्मण गहपति या क्षत्रिय गहपति शब्द आए हैं और वैश्य के अर्थ में मात्र गहपति शब्द प्रयुक्त हुआ है। वैश्य कुल को गहपति कुल कहा गया है। जातियों की सूची में गहपति शब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय के पश्चात और शूद्र के पूर्व आता है। गहपति कुल के सदस्य अपने पैतृक कर्म का त्याग करने पर भी गहपति कुलोत्पन्न कहलाते रहे। परिस्थितिवश साग–सब्जी का क्रय–विक्रय करने अथवा मजदूरी करने पर भी वे गहपति ही कहलाते थे।[18] वैश्य वर्ण समाज का सबसे अधिक समृद्ध वर्ग था। इस कारण समाज में इस वर्ण की प्रतिष्ठा काफी महत्त्वपूर्ण थी। यह वर्ण ब्राह्मणों के बौद्धिक आधिपत्य एवं क्षत्रियों के शौर्यपूर्ण आभिजात्य के समान तो नहीं था किंतु शूद्रों की हीनत्व से ऊपर था। इस प्रकार इस वर्ग की स्थिति माध्यमिक थी। अमात्य एवं ब्राह्मण के साथ गहपति का पालि साहित्य में स्वतन्त्र रूप से उल्लेख किया गया है। महावग्ग में क्षत्तिय परिषद्, ब्राह्मण परिषद् तथा गहपति परिषद् का भी उल्लेख किया गया है।[19] आपातकालीन स्थिति में वैश्य के लिए ब्राह्मण धर्मानुशीलन की अनुमति प्राप्त थी।[20] समृद्धि के आधार पर वैश्य वर्ण कई उपवर्गों में विभाजित था। सेट्ठि का राजकीय आदर भी किया जाता था, क्योंकि जातक में एक स्थान पर राजकुमार और सेट्ठि पुत्र में गहरी मित्रता का उल्लेख मिलता है।[21] सेट्ठि दानी एवं परोपकारी होते थे। समाज के अनेक सार्वजनिक कार्य इसी वर्ण द्वारा सम्पादित किये जाते थे। अनाथपिण्डक का नाम तत्कालीन परोपकारियों एवं धनाढ्यों में प्रथम स्थान पर था।[22] कुछ सेट्ठियों को राज कर्मचारियों के समान दर्जा प्राप्त था। सेट्ठि एक राजकीय पद था। नगर का सबसे धनाढ्य पुरूष ही यह पद प्राप्त करता था। यह आर्थिक समितियों का अध्यक्ष होता था। यह श्रेणी के अन्तर्गत शासन एवं व्यवस्था का उत्तरदायी होता था।[23] एक ओर सेट्ठि 1 हजार करीब भूमि के उपभोक्ता होते थे दूसरी ओर उच्च कोटि के शिल्पी भी होते थे।[24] ये समृद्ध व्यापारी एवं पशुपालक भी होते थे। प्रत्येक आर्थिक क्षेत्र पर इनका प्रभुत्व था। साधारणतः वैश्य के धंधे मुख्यतः कृषि, व्यापार, शिल्प एवं पशुपालन था। शिल्पियों के अन्तर्गत खनिजकार, सुवर्णकार, रजतकार, मणकार, दन्ताकर, वर्धिन, कुम्भार, रजक, सुचेद, मालाकार, गन्धिक, रथिक एवं धनुग्गहि आदि सम्मिलित थे।[25]

शूद्रों की स्थिति

मनुस्मृति के अनुसार शूद्रों का कार्य द्विज वर्ण की सेवा करना बताया गया है। जातक साहित्य में इस वर्ण को शूद्र तथा हीन जाति का बताया गया है। इनका कर्त्तव्य था तीनों वर्णों की सेवा करना।[26] शूद्रों के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में हीन जाति और हीनशिपनि का भी उल्लेख आता है। प्रथम के अन्तर्गत बहेलिया, अस्पाकार आदि आते हैं। द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत कुम्भकार, चमार, नाई आदि आते थे। पालि साहित्य में समृद्ध शिल्पी शूद्र एवं त्याजकर्मा शूद्र का उल्लेख हुआ है। औजारों के निर्माण कार्य पर शूद्र वर्ण का आधिपत्य था। उच्च शूद्रों में बुनकर (तन्तुवाय), बढ़ई (तक्षक), लोहार (कम्मक), दन्तकार एवं कुम्हार आदि उल्लेखनीय हैं। प्रत्येक जाति का प्रमुख व्यक्ति जेट्ठक कहलाता था।[27] कुछ शूद्र जातियाँ घुमन्तू भी थी जो घूम–घूमकर मनोरंजन कार्य करती थीं। जैसे– शंखवादक।[28] शूद्र वर्ग में वनकम्मिक, लकड़हारे, आराम, गोपक आदि जातियों का उल्लेख हुआ है।

कुछ शूद्र शिल्पियों को राजकीय सेवा करने का अवसर भी मिलता था। पालि साहित्य में राजकीय 'कुम्भकार',[29] राजकीय नलकार [30], राजकीय मालाकार,[31] राजकीय नृपका[32] आदि अनेक शूद्रों का वर्णन मिलता है। शिल्पी शूद्र समाज का महत्त्वपूर्ण अंग था। तत्कालीन आर्थिक अभ्युत्थान में इस वर्ण ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। शूद्र वर्ण की स्थिति निम्नतम होते हुए भी वे समाज के हित में अति उपयोगी एवं आवश्यक थे। कभी–कभी शिल्पी शूद्र अपनी बहुल धन–सम्पदा के कारण समाज में अन्य वर्णों के समान प्रतिष्ठित स्थान पाते थे। पालि साहित्य में अनेक समृद्ध शूद्र शिल्पियों का वर्णन मिलता है।[33] शूद्रों की एक ऐसी श्रेणी भी विद्यमान थी जो किराये पर काम करती थी। कृषि आदि कार्यों हेतु जिन शूद्रों को

वेतन या पारिश्रमिक पर रखा जाता था वे कम्मकार या भाटक कहलाते थे।[34] कुछ मजदूर या कम्मकार प्रातःकाल से सायंकाल तक कार्य करते थे। ये कभी–कभी स्वामियों के घर पर ही भोजन करते थे। कुछ कर्मकार दिन भर काम करके सायंकाल अपने घर चले जाते थे।[35] कुछ श्रमिक दिन–रात मालिक के घर में ही रहते थे।[36] कम्मकारों को पारिश्रमिक के आधार पर इन कोटियों में बाँटा जा सकता है– दिवसमयग, अत्तासमयग, उच्चतमयग, कब्बालमयग आदि। कभी–कभी वेतन की राशि एक मास अथवा अर्द्धमास भी होती थी। विभिन्न प्रकार के सेवक शूद्रों का उल्लेख घरेलू नौकर के रूप में हुआ है। दास वर्ग शूद्रों को इसी श्रेणी में सम्मिलित किया जाता था। शूद्रों की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति भले ही सामान्य थी किंतु समाज में इन्हें हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था। कृषि, व्यापार एवं व्यवसाय तीनों आर्थिक क्षेत्रों के उत्कर्ष में शूद्रों का विशेष योगदान था। इस समय शूद्रों को अध्ययन का भी अधिकार प्राप्त हो गया था। कुछ ने तो शूद्रों को भिक्षुत्व भी प्रदान कर दिया था। विनयपिटक में शूद्रों के राजघरानों से सम्बन्धों का भी संकेत मिलता है।[37] शूद्रों की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति भले ही सामान्य थी किंतु समाज के प्रत्येक क्षेत्र में विकास के लिए इनका योगदान महत्त्वपूर्ण था। इस युग में शूद्रों की स्थिति पूर्व युग की अपेक्षा अधिक समुन्नत आदरणीय एवं प्रतिष्ठित थी।

बुद्ध का सिद्धांत था कि व्यक्ति के जन्म से नहीं अपितु उसके कर्म से उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिए। सुत्तनिपात के अनुसार तथागत ने कहा कि जो आदमी क्रोधी, लोभी, अनैतिक, चुगलखोर, मिथ्यादृष्टि एवं बंचक हो उसे वृषल समझना। जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है और न ही जन्म से शूद्र। बुद्ध एक खुले एवं स्वतंत्र समाज के पक्षपाती थे।

संदर्भ सूची

1. चुल्लवग्ग– 9/1/4
2. अंगुत्तरनिकाय–2, पृ. 85
3. सुत्तनिपात– 2/7/20–22
4. जाटक––1, पृ. 298
5. मनुस्मृति 4/6; 10/81–82
6. आपस्तम्ब– 1/7/20/11
7. सुत्तनिपात– 3/9;4, पृ. 207
8. महावस्तु जि0–3
9. विनयपिटक, महावग्ग, 1/1/2
10. मज्झिमनिकाय, पृ. 133–34
11. बसाक– 1/339/1, 2/194/815
12. सौन्दरानन्द– 18/19
13. ऋग्वेद– पृ. 8, 16, 18, 35, 1.1.57.2
14. मनुस्मृति– 1/89
15. विनयपिटक– 9/1/41
16. मदनमोहन सिंह, बुद्धकालीन समाज और धर्म, पृ. 21
17. विनयपिटक– 10/1/7
18. जातक– 3, पृ. 21, 325
19. महावग्ग– 6.28, 4
20. अर्थशास्त्र– 3.7
21. जातक– 3.475
22. चुल्लवग्ग– 6.4.1
23. जातक– 5.383
24. सुत्तनिपात– पृ. 280
25. डॉ. शशि अवस्थी प्रणीत शोध ग्रंथ– शीर्षक–व्यवसाय
26. मनुस्मृति– 1/91
27. जातक– 3.405, 4.161
28. जातक– 1.284
29. जातक– 5.290
30. जातक– 5.292
31. जातक– 5.292
32. जातक– 5.292
33. दीघनिगय– 2.126
34. अंगुत्तरनिगय– 3.36, 4.277
35. जातक– 3.445
36. जातक– 4.271
37. विनयपिटक– 7.1.7